REVIEW OF RESEARCH
ISSN: 2249-894X
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF)
VOLUME - 15 | ISSUE - 8 | MAY - 2026

जमींदारी प्रथा के विरोध में दलित प्रतिरोध का स्वर

डॉ. भाविनकुमार अंबालाल वणकर
सहायक प्राध्यापक, नवगुजरात आर्ट्स एंड कोमर्स कोलेज, बालासिनोर, (गुजरात).

प्रस्तावना:-

भारत देश में ब्रिटिश काल के दौरान प्रचलित सामाजिक व्यवस्था, जिसे जमींदारी प्रथा के नाम से जाना जाता है, अत्यंत शोषणकारी थी। जमींदारों के हुक्म के आगे गरीब मजदूर विवश होकर उनके खेत जोतते थे तथा वे खेती करने वालों से कर वसूलते थे। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भी यह प्रथा पूर्ण रूप से समाप्त नहीं हुई क्योंकि आज़ादी केवल अमीरों और सवर्णों तक सीमित रह गई थी; गरीबों और वंचितों को उसका वास्तविक लाभ नहीं मिला। सामाजिक व्यवस्था में जमींदारों के नीचे किसान और उनसे भी नीचे गरीब एवं दलित मजदूरों का स्थान था। ये लोग शोषण और अत्याचार के सबसे अधिक शिकार होते थे। जमींदार उन्हें दास बनाकर उनसे सेवा-चाकरी करवाते थे। वे सामंतवादी और ब्राह्मणवादी सोच रखते थे तथा दलितों पर अत्याचार और शोषण करते थे। वे चाहेकितनी भी दमनकारी नीतियाँ अपनाएँ, उनके विरुद्ध आवाज़ उठाने वाला कोई नहीं होता था। यदि शोषित वर्ग आवाज़ उठाता भी था, तो प्रशासन के अधिकारी, जो प्रायः सवर्ण वर्ग से होते थे, शोषकों का ही समर्थन करते थे। किंतु शिक्षित दलित वर्ग अत्याचार के विरुद्ध संघर्ष करता है। उसमें चेतना का उजास दिखाई देता है और वह शोषण एवं अत्याचार के खिलाफ संघर्ष करते हुए न्याय की माँग भी करता है।

बकरी के दो बच्चे

रत्नकुमार सांभरिया कहानी के सशक्त हस्ताक्षर हैं। उनकी कहानियाँ नए युग को जन्म देती हैं।'बकरी के दो बच्चे' दलित चेतना की बेबाक अभिव्यक्ति है। लेखक ने जमींदार और दलित जीवन का यथार्थवर्णन किया है। दानसिंह की बड़ी हवेली है, तो दलपत का कच्चा घर। दोनों के बीच से गाँव का रास्ता जाता था, जो उन्हें अलग करता था।

दलपत के दो बेटे हैं- रामसिंह और संपत। संपत शहर की फैक्ट्री में काम करता है और रामसिंह फौज में है,जिसके लिए मनीऑर्डर आया है। दलपत की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होने के कारण वह भैंस खरीदना चाहता था, किंतु पत्नी धर्मकली के कहने पर वह दूर गाँव से एक गाभिन बकरी खरीद लाया। कुछ दिनों बाद बकरी ने दो सुंदर बच्चों को जन्म दिया। बच्चे इधर-उधर घूमते और कुलाँचे भरते रहते थे। बकरी को चारा खिलाने, पानी पिलाने आदि कार्यों में दलपत और धर्मकली का दिन निकल जाता था।एक रात अचानक बकरी जोर-जोर से मिमियाने लगी। दलपत ने दिया जलाकर देखा कि बकरी के दोनों बच्चे गायब हैं। वह चिंतित हो गया कि आखिर बच्चे कहाँ गए होंगे!

ठंड का माहौल था। हवा तेजी से चल रही थी। दलपत अपने चबूतरे से उठकर दानसिंह की हवेली के आँगन की ओर देखता है। बच्चे उनकी हवेली में घुस गए थे। दानसिंह का दबंग बेटा धर्मपाल दोनों बच्चों को हाथों में लटकाए आया और दलपत के सामने पटक दिया। दलपत ने पूछा, 'यह क्या अंधेर है, धर्मपाल?' उसने कहा, 'घड़ी-घड़ी हवेली में घुस आते थे। मैंने मारकर पटक दिया इन ससुरों को।' उसके भीतर क्रोध और अहंकार की भावना प्रकट होती है। वह वापस चला जाता है। बकरी की आँखों में पानी भर आता है। दोनों पति-पत्नी भी भावुक हो उठते हैं

दलपत में चेतना जागृत होती है। वह हिम्मत करके दानसिंह की हवेलीमें चला जाता है। दानसिंह पलंग पर बैठा हुआ हुक्का गुड़गुड़ा रहा था। दलपत राम-राम करते हुए बोला, 'बाबूजी, धर्मपाल ने बहुत बड़ी गलती कर दी है।'

दानसिंह ने पूछा, 'दलपतिया, धर्मपाल सिंह ने क्या गलती कर दी है?' वह कहता है- "चार दिन पहले मेरी बकरी भी ब्याही थी। उसके दोनों बच्चे मार दिए, इसने।"[1] दलपत के हृदय की धड़कन तेज हो गई थी। दानसिंह अकड़ते हुए स्वर में बोला, 'अब क्या चाहिए तुझे? दस-बीस रुपए?'

वह कहता है, 'ना-ना, मुझे रुपए नहीं चाहिए। बस..., "आप धर्मपाल को धमका दो, आइंदा ऐसी गलती ना करें।"[2] वह जातिवादी ज़हर उगलते हुए कहने लगा, "ढेड़ और भेंड़ को हम जीव नहीं मानते, समझे। ज्यादा मुंह चोरी की न, तो तुझे भी..।"[3] वह खूंटी से टंगी बंदूक की ओर देखता है। दानसिंह द्वारा दी गई गाली दलपत को अंदर तक झकझोर देती है। ये लोग दलितों को जानवर समझते थे तथा जातिसूचक शब्दों से उनका अपमान भी करते थे। लेखक ने इस पर भी प्रश्नचिह्न लगाया है।

शिक्षा के माध्यम से दलित समुदाय में जो परिवर्तन आया है उसे भी लेखक ने दर्शाया है। दो महीने पहले की बात है, दानसिंह अपने चबूतरे पर बैठा बंदूक की सफाई कर रहा था। बंदूक की नाल दलपत के घर की ओर रहती थी। दानसिंह का रोज-रोज बंदूक साफ करना और उसकी नाल का दलपत के घर की ओर होना, दलपत को भयभीत कर देता था। "उसका बड़ा लड़का जिस दिन से फौज में भर्ती हुआ है, उसमें हिम्मत हो गई है और उसका मनोबल बढ़ गया है| दलपत भीतर से अपनी लाठी निकाल लाया| वह अपने चबूतरे पर बैठ गया और लाठी के सिरों पर तांबे के बंद लगाने लगा| उस दिन के बाद दानसिंह ने बंदूक साफ करनी छोड़ दी|[4] बेटे के फौज में नौकरी लगते ही दलपत में यह हिम्मत आ जाती है कि वह बंदूक को देखकर छिपता नहीं बल्कि सामने खड़ा रहकर लाठी पर ताँबे के बंद लगाता है। यह शिक्षा का ही परिणाम है।

दलपत हिम्मत करके बकरी के बच्चों को उठाकर दफनाने के लिए जा रहा था। इतने में उसे शर्मचंद आता हुआ दिखाई दिया। उसने पूछा, 'क्या तुम्हारी बकरी के बच्चों को भी जाड़ा लग गया?'तब दलपत बताता है, 'जाड़े की मार से नहीं मरे, बल्कि दानसिंह के बेटे धर्मपाल ने उन्हें पीट-पीटकर मार डाला।'

दलपत संवेदनशील शब्दों में कहता है, 'चार दिन के मासूम बच्चे क्या जानें दलपत का घर, क्या जानें दानसिंह की हवेली।'

दलपत समूची घटना से शर्मचंद को अवगत कराता है। दानसिंह द्वारा दी गई जातिसूचक गाली ने शर्मचंद को भी भीतर तक झकझोर दिया। उसके भीतर आत्मसम्मान की चेतना जाग उठती है। वह कहता है- "दलपत, मैं हवेली में जाकर उसे मार तो सकता हूँ लेकिन मुझे दानसिंह के अहंकार को मारना है। देखो दलपत, हमारे पास न जमीन-जायदाद है, न महल-चौबारे है। नेमत और मेनत ही हमारी सबसे बड़ी पूंजी है। अगर यह पूंजी लुट गई, हम दरिद्र हो जाएंगे। मैं दानसिंह को एहसास करा देना चाहता हूँ, हम भी आदमी है, जैसा दानसिंह। हम भी वैसे ही जन्मे हैं, जैसे दानसिंह। थाना-कचहरी...। ये खूनी जोंके हमारी मेनत पर इतनी मुटा गई है कि अब फटीं। हम मेनत के माई-बाप होते हुए भी जीव नहीं है। दलपत, ये इसलिए बड़े हैं, हम इनको बड़ा मानते हैं। जिस दिन हम इन्हें छोटा करने लग जायेंगे, ये छोटे हो जाएंगे। इतने छोटे जितना हम चाहेंगे। मैं दानसिंह को हथकड़ी लगवाऊंगा।"[5] भारत देश में समान कानून होने के बावजूद दलितों के साथ पुलिस थानों में भी ऐसा व्यवहार किया जाता है, मानो वही अपराधी हों। दलितों को कानून और अपने अधिकारों से परिचित होने की आवश्यकता है, अन्यथा वे निरंतर अपमानित होते रहेंगे।

धर्मकली के भीतर भी स्वाभिमान की चेतना जाग उठती है। वह अपने गले से हंसुली उतारकर शर्मचन्द की ओर बढ़ा देती है। वह कहती है- "धर्म भाई हो, तब जानूं पापी दानसिंह को हथकड़ी लगवा दो|"[6] शर्मचन्द चेतनशील पात्र है। वह दलपत में हिम्मत जगाता है और कहता है, "मैं घर जाकर कपड़े बदलता हूँ, तुम इन बच्चों को लेकर आओ।"

दलपत और धर्मकली घर में पड़े रुपये ढूँढ़ लाते हैं। मृत बच्चों को कपड़े में लपेटकर थैली में रख देते हैं। थैला उठाकर जब दलपत निकलने लगा, तब धर्मकली ऐसे रो पड़ी मानो किसी व्यक्ति की अर्थी उठ रही हो।

वह शर्मचन्द के घर गया। शर्मचन्द ने दरोगा के नाम रिपोर्ट लिखी और दलपत ने उस पर हस्ताक्षर किए। दोनों थाने जाने के लिए निकले। वे टेंपो में बैठकर शहर गए। दलपत थाने में जाने से डर रहा था। दलित प्रायः थाने जाने से डरते हैं, क्योंकि उन्हें कानून और अपने अधिकारों का पर्याप्त ज्ञान नहीं होता। इसी कारण पुलिस उन्हें डराती-धमकाती है। शर्मचन्द ने रिपोर्ट थानेदार को पकड़ा दी। उसने उस पर हल्की-सी नजर डाली और फिर उसे डस्टबिन में फेंक दिया। थानेदार कुर्सी से उठा। उसने थैले पर डंडा मारा और भड़ककर बोला- 'उल्लू के पट्ठो! इसमें क्या है?' 'बकरी के मरे हुए दो बच्चे।'

शर्मचन्द बोला, 'जी दरोगा साहब, दानसिंह ने इन्हें पीट-पीटकर मार डाला है।'

यहाँ दरोगा का चरित्र शोषित वर्ग के प्रति भेदभावपूर्ण तथा शोषक वर्ग के समर्थक के रूप में दिखाई देता है। वह जातिसूचक शब्दों का प्रयोग करते हुए कहता है- 'बेवकूफो! हरामज़ादो! नीचे जाति के लोगों! यह थाना है, मुर्दाघर नहीं। बकरी के मरे हुए बच्चे यहाँ क्यों उठा लाए हो?'

तब वह दरोगा से कहता है- "दरोगा साब, हम गरीबों की धन-दौलत और जमीन-जायदाद भेड़-बकरियां ही होती है। और उनकी हिफाजत करना सरकार का फर्ज है। हमारी एफ.आई.आर. दर्ज कर लीजिए आप।"[7] थानेदार उसे धमकाते हुए कहता है, 'अच्छा, फ़र्ज़ का पाठ तू मुझे पढ़ा रहा है! थाने से बाहर भाग जाओ। चमड़ी उधेड़ दूंगा। यहाँ ऐसे आ जाते हैं जैसे थाना-कचहरी मनोरंजन का साधन हो।'

दरोगा की फटकार से दोनों थाने से बाहर निकल गए। दरोगा टेबल पर डंडा मारकर हँसता है।थाने के बाहर आकर दोनों बहुत लज्जित हो गए थे। दलपत कहता है, 'ये पैसे ले जाकर थानेदार को दे देते हैं और दानसिंह के मुँह पर एक थप्पड़ मार दें। मेरी आग बुझ जाएगी।'

तब शर्मचंद कहता है, 'दानसिंह न जाने कितनी रकम फूँक चुका होगा।'

लेखक ने पुलिस थाने में हो रहे भ्रष्टाचार का भी पर्दाफाश किया है। शर्मचंद बहुत लज्जित हो गया था। वह मन ही मन सोचता है कि आखिर वे क्या उम्मीद लेकर आए थे। घर से शेर बनकर चला था, लेकिन यहाँ आकर बकरी का बच्चा बन गया। अब थाने से घर क्या मुँह लेकर वापस जाएंगे? भाभी धर्मकली को क्या जवाब दूँगा?

दलपत की हिम्मत टूट चुकी थी। शर्मचंद को रामदुलारे आख़िरी उम्मीद की किरण के रूप में याद आया। रामदुलारे शर्मचंद का साला था, जो सफाई कर्मचारियों की यूनियन का अध्यक्ष था। वे दोनों उसके घर गए। दलपत ठेला उठाकर चलते-चलते हाँफ गया था।

शर्मचंद ने रामदुलारे को सारी घटना से अवगत कराया। दानसिंह की यह उक्ति- 'डेढ़ और भेड़ को हम जीव नहीं मानते।' उसके हृदय पर चोट कर गई। उसके माथे से पसीना छूट आया। उसने दाँत किटकिटाए, मुट्ठियाँ कस लीं। दीवार पर मुट्ठी मारकर वह भड़क उठा, 'दुष्ट दानसिंह को मैं जान से मार डालूँगा।'

शर्मचंद कहने लगा, 'नहीं-नहीं रामदुलारे, हमें दानसिंह को नहीं, उसके अहम को मारना है।' रामदुलारे ने थैली में मरे हुए बकरे के बच्चे को देखा। वह बहुत क्रोधित हुआ और बोला, 'इन मरे हुए बच्चों को ले जाकर एस.पी. साहब की टेबल पर पटक दूँगा। गाँव के जमींदारों के अत्याचार की बानगी देखो।'

रामदुलारे डॉ. अंबेडकर के शिक्षा, संगठन और संघर्ष के सिद्धांतों से भलीभाँति परिचित था। उसने एस.पी. साहब को फोन किया, 'सिंह साहब, मैं रामदुलारे, सफाई कर्मचारियों की यूनियन का अध्यक्ष बोल रहा हूँ।' उसने एस.पी. को सारी घटना का विवरण दिया। इसके बाद एस.पी. ने एस.एच.ओ. को फोन किया। "दो घंटे के अंदर अंदर दानसिंह को हथकड़ी लगाकर थाने ले आओ। वरना में तुम्हारे तीनों स्टार खींचकर तीन फीते लगा दूंगा निकम्मा कहीं का।"[8] दानसिंह ने थानेदार को पाँच हजार रुपये की रिश्वत दी थी। फिर भी जब उसे गिरफ्तार कर लिया गया, तो थानेदार को यह डर सताने लगा कि कहीं वह सस्पेंड न हो जाए। इसी भय से उसने दलपत की वह रिपोर्ट, जिसे उसने डस्टबिन में फेंक दिया था, निकालकर एफ.आई.आर. दर्ज कर ली।

थानेदार हवेली में आया और दानसिंह को हथकड़ी लगा दी। थानेदार उसे ले जा रहा था और समूचा गाँव इकट्ठा हो गया था। दानसिंह का जमींदारी अहंकार टूटकर चकनाचूर हो गया। गाँव में उसकी जो इज्जत थी, वह भी धूल में मिल गई। वह दरोगा के चरण छूकर गुहार करने लगा, "दरोगा साहब, दलपत की बकरी के दो बच्चे मारे हैं, धर्मपाल ने। मैं उसे दो भैंसें दे दूंगा हथकड़ी झाड़ दो।"[9] वह दरोगा से हथकड़ी छुड़ाने की विनती करने लगा। उसे ले जाते समय दरोगा की नजर खूंटी से टंगी बंदूक पर पड़ी। उसने उस बंदूक को भी अपने कब्जे में ले लिया। इसके बाद दरोगा उसे गाड़ी में बिठाकर थाने ले गया।

निष्कर्ष:-

जमींदारों को आज भी यह भ्रम बना हुआ है कि दलित समाज आज़ादी से पूर्व की भाँति ही असहाय और दबा हुआ है। वे उन्हें डरा-धमकाकर अपना वर्चस्व बनाए रखना चाहते हैं तथा जातिसूचक अपशब्दों द्वारा निरंतर अपमानित करते रहते हैं। किंतु आज़ादी के बाद संविधान के उदय ने सभी नागरिकों को समानता, स्वतंत्रता और न्याय का अधिकार प्रदान किया। परिणामस्वरूप दलित वर्ग अपने ऊपर होने वाले अत्याचारों के विरुद्ध आवाज़ उठाने लगा है तथा न्याय प्राप्ति हेतु कानून का सहारा भी लेता है।

यदि पुलिस-प्रशासन भी जातिवादी मानसिकता वाले लोगों का समर्थन करे, तो दलितों को उनके विरुद्ध भी संघर्ष करना पड़ता है। तभी अत्याचारियों को दंड मिल पाता है। आज़ादी के इतने वर्षों बाद भी वंचित और दलित समुदायों को अपने अधिकारों के लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ रहा है- यह भारतीय समाज के लिए एक गंभीर और विचारणीय प्रश्न है।

'बकरी के दो बच्चे' कहानी जमींदारों के अहंकार, सामाजिक विषमता तथा पुलिस तंत्र के भ्रष्टाचार का यथार्थ चित्रण करती है। यह कहानी डॉ. भीमराव अंबेडकर के 'शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो' के संदेश को सार्थक रूप से प्रस्तुत करते हुए दलित समाज को अपने अधिकारों और न्याय के प्रति जागरूक एवं संघर्षशील बनने की प्रेरणा देती है।

सन्दर्भ-सूची

1. रत्नकुमार सांभरिया, दलित समाज की कहानीयां, कहानी- 'बकरी के दो बच्चे', अनामिका पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स प्रा. लि.- नई दिल्ली, दूसरा संस्करण 2017, पृ., सं. 31
2. वही, पृ., सं.- 32
3. वही, पृ., सं.- 32
4. वही, पृ., सं.- 32
5. वही, पृ., सं.- 33
6. वही, पृ., सं.- 34
7. वही, पृ., सं.- 36
8. वही, पृ., सं.- 39
9. वही, पृ., सं.- 40